आर्य आक्रमण सिद्धांत
एक समीक्षा

शंकर शरण*

भारतीय इतिहास के संदर्भ में आर्य आक्रमण या आर्य आगमन का सिद्धांत एक विवादास्पद विषय है। कुछ वर्ष पहले संयुक्त राज्य अमेरिका की अदालत में भी इस विषय पर एक शैक्षिक सुनवाई हुई। दुनिया के अनेक भारतविद् और इतिहासकार इस सिद्धांत पर बँटे हुए हैं। इस सिद्धांत की परिकल्पना बमुश्किल दो सौ वर्ष पुरानी है, फिर भी इसे निर्णायक रूप से खारिज नहीं किया जा रहा है, जबकि इसके पक्ष में आज तक एक भी ठोस प्रमाण नहीं दिया जा सका है। फिर भी इसे अंतिम रूप से अस्वीकार न करने का मुख्य कारण यह है कि कुछ विशिष्ट राजनीतिक धाराएँ अपनी ज़रूरत के लिए इसका उपयोग करती रही हैं। इस पृष्ठभूमि में यह आवश्यक है कि शिक्षकों, विद्यार्थियों और शिक्षा-नीतिकारों को इस के बारे में पूरी और प्रमाणिक जानकारी हो। प्रस्तुत लेख में इस विषय पर संक्षेप में सभी ज़रूरी बिंदुओं को रखने का प्रयत्न किया गया है।

भारत से संबंधित एक परिकल्पना पिछले डेढ़-दो सौ वर्ष से विवादित चल रही है। यह है आर्य आक्रमण या आर्य आगमन सिद्धांत, जिसके अनुसार, 'आर्य' नामक कोई नृवंशीय जाति या नस्ल थी, जो भारत में कहीं बाहर से आई थी, और यहाँ के मूल लोग अनार्य-द्रविड़ हैं, जो दक्षिण भारत तथा उत्तर भारत में भी आदिवासी हैं। आरंभ से ही यह सिद्धांत केवल एक अनुमान था, जिसे बाद में स्वयं अनुमान लगाने वालों ने भी निराधार पाया। फिर भी आज यह हमारे अकादमिक, बौद्धिक जगत में जमा हुआ है। अतः विचारणीय है कि यह और ऐसी धारणाएँ कहाँ से आईं? क्या इन मान्यताओं के पक्ष में कोई प्रमाण हैं? इन सभी बिंदुओं की जाँच करने पर जो बातें सामने आती हैं वे अत्यंत आश्चर्यजनक हैं। सर्वप्रथम यह कि पहले तो उल्टी मान्यता

* *एसोसिएट प्रोफ़ेसर,* (राजनीति शास्त्र), सामाजिक विज्ञान शिक्षा विभाग, एन.सी.आर.टी, नयी दिल्ली 110016

प्रचलित थी। दो सौ वर्ष पहले तक माना जाता था कि आर्यों का मूल स्थान भारत था, जहाँ से वे दूसरे महाद्वीपों में गए। इसके सांस्कृतिक, भाषायी, धार्मिक, साहित्यिक आदि कई संकेत भी विभिन्न देशो में पाए जाते हैं। इसलिए विश्व के कई विद्वान, उदाहरणार्थ यूरोपीय दार्शनिक इमैन्युल कांट और वाल्तेयर की मान्यता थी कि भारतीय-यूरोपीय (भारोपीय) जाति का मूल निवास स्थान भारत था। यह विचार उन्नीसवीं सदी के आरंभ तक मान्य रहा। जर्मन दार्शनिक कार्ल श्लेगेल (1772-1829) समेत पहली पीढ़ी के सभी भारोपीय अध्ययनकर्ता, अन्वेषणकर्ता भी यही मानते थे। सन् 1830 के लगभग कहना शुरू हुआ कि वह मूल स्थान पूर्वी और मध्य यूरोप था, जहाँ से भारोपीय जाति दूसरी जगहों पर गई। यही 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' (आर्यन इनवैजन थ्योरी, AIT) की शुरुआत थी, जिस से बात निकली कि तब भारत पर भी उन्हीं आर्यों का आक्रमण हुआ होगा, जो इसे जीतकर यहीं बस गए। फिर उन्होंने यहाँ के मूल अनार्य निवासियों से संबंध बनाए, जिससे उनका गोरा रंग, भूरा हो गया तथा दक्षिण के लोग मूल यहीं के थे, जो श्याम-काले रंग के थे आदि। ऐसा कहने की शुरुआत करने वाले भारत स्थित विदेशी ईसाई मिशनरी थे, जिन्होंने भारतीय भाषा, संस्कृति का अध्ययन करके बाइबिल से उसे जोड़ने की कोशिशें कीं। इस तथ्य को भी ध्यान रखना चाहिए कि उनके भारत-अध्ययन, तत्संबंधी परिकल्पनाओं तथा 'खोजों' का मुख्य उद्देश्य यहाँ ईसाइयत के प्रचार का मार्ग बनाना था। मैक्समूलर जैसे प्रसिद्ध भारतविद् ने भी इसे रेखांकित किया है। दूसरी बात ध्यान में रखने की है कि भारत के बारे में स्वयं भारतीय ज्ञान तथा यहाँ के शास्त्रों एवं मनीषियों की बातों का उन मिशनरी शोधकर्ताओं के लिए कोई मूल्य नहीं था।

इस पृष्ठभूमि में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि 'आर्य आक्रमण' वाला सिद्धांत यहाँ तुरंत राजनीतिक उपयोग में आने लगा। तब भारत पर शासन कर रहे अंग्रेज़ों ने इस परिकल्पना को उपयोगी पाया कि भारत पर 'बाहरी' शासन पहले भी, बल्कि शुरू से ही रहा है और अंग्रेज़ तो उन्हीं यूरोपियन 'आर्यों' के वंशज हैं, जो हजारों वर्ष पहले भी यहाँ आकर बसे। यानी, भारतीय, विशेषकर उत्तर-भारतीय, उनमें भी सवर्ण लोग, यूरोपियनों के ही बंधु हैं जो अब पिछड़ गए हैं, जिन्हें उठाने के लिए उनके पुराने भाई अंग्रेज़ आए हैं, आदि।

उस सिद्धांत का दूसरा उपयोग अधिक गहरा था, पहला, दक्षिण-भारतीय और उत्तर-भारतीय तथा सवर्ण और निम्न मानी जाने वाली जातियाँ भी, भिन्न-भिन्न नस्लें हैं। दूसरा, उनमें विजित और विजेता वाला संबंध है। तीसरा, उनमें पुरानी, सहज दुश्मनी वाला संबंध है — या कि वह संबंध होना चाहिए।

इस तरह, भारत पर अंग्रेज़ी राज की सहजता, वैधता के लिए तथा भारतीय निवासियों में उत्तर तथा दक्षिण के बीच, तथा उच्च-जाति और निम्न-जाति के बीच फूट डालने के लिए, बल्कि हर तरह के अलगाववादी विचार को वैचारिक आधार देने के लिए यह 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' बहुत उपयोगी बना। इसलिए, अंग्रेज़ी शासन ने इसे ऐतिहासिक तथ्य के रूप में पूरी शिक्षा प्रणाली में स्थापित कर दिया। इस सहजता से कि बीसवीं सदी के कई

भारतीय महापुरुष तक इसे तथ्य मानकर चलते थे। यद्यपि, जिन मनीषियों ने इस पर खोज-बीन की, उन्होंने पाया कि यह सिद्धांत निराधार था, जैसे— श्री अरविन्द की प्रसिद्ध लेख-माला 'भारतीय संस्कृति के आधार,' जो 1918 से 1920 के बीच उनके पत्र *आर्य* में प्रकाशित हुई थी।

परंतु अंग्रेज़ी मिशनरी संगठित कटिबद्धता ने उस सिद्धांत को निरंतर प्रचारित करने में कोई कसर नहीं छोड़ी। फलतः हर तरह की अलगाववादी धाराओं ने, विशेषकर ब्राह्मण विरोधी, द्रविड़वादी आंदोलन के नेताओं ने इसे कसकर पकड़ लिया। यह उनके आक्रोश को एक सही लगने वाला आधार देता था। द्रविड़वादी नेतागण पाकिस्तान आंदोलन की सहायता में भी जुड़े थे। अंग्रेज़ों ने उन्हें प्रोत्साहित किया, क्योंकि भारत में अंग्रेज़ी राज के विरुद्ध स्वतंत्रता आंदोलन में अनेक नेता ब्राह्मण थे। उनके विरुद्ध जस्टिस पार्टी जैसे धुर ब्राह्मण विरोधी, द्रविड़ अलगाववादी, विभाजनकारी आंदोलन को अंग्रेज़ों ने भरपूर सहायता दी। समय के साथ वह अलगाव एक पक्की मानसिकता में बदल गया।

आज भी द्रविड़, विशेषकर तमिल अलगाववाद का मूल स्रोत उस 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' में ही है। इस कथित सिद्धांत के बिना कथित द्रविड़वाद के पास कोई वैचारिक आधार नहीं, इस पर ध्यान देने की ज़रूरत है। इसीलिए इसे छोड़ा नहीं जाता, जिसका उदाहरण यह है कि स्वयं डॉ. अंबेडकर जैसे विद्वान और सबसे बड़े दलित नेता द्वारा 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' को गलत मानने के बावजूद आज के कई दलित नेता उसी सिद्धांत को पकड़े हुए हैं। क्योंकि हर तरह की अलगाववादी राजनीति के लिए वह सिद्धांत उपयोगी है और उसे खारिज करके भारत से, भारत के अन्य लोगों से अलगाव रखने, उनके विरुद्ध लड़ाई ठानने या घृणा करने का कोई ठोस कारण न पहले था, न आज है। जहाँ दलित आक्रोश का एक आधार है, चाहे अतिरंजित ही सही, वहीं द्रविड़वाद शुरू से ही केवल कल्पना है। इसीलिए वे किसी हाल में 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' को छोड़ने के लिए तैयार नहीं होते।

ऐसा इसलिए, क्योंकि यहाँ उच्च-जातियों को 'आर्य', 'वैदिक' तथा निम्न जातियों को 'अनार्य' या 'द्रविड़' कहकर जो राजनीति चलती है, वह आर्य आक्रमण सिद्धांत को गलत मानते ही निराधार हो जाती है। इसीलिए डॉ. अंबेडकर जैसे दलित महापुरुष द्वारा उस सिद्धांत को खारिज किए जाने के बावजूद आज के अलगवावादी दलित नेता उसे नहीं छोड़ते। अंग्रेज़ों द्वारा बहु-प्रचारित-प्रसारित 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' आज भी विदेशी मिशनरियों के सक्रिय समर्थन से ही हमारे अकादमिक-राजनीतिक वर्ग में जमा हुआ है। इसे स्वयं देखा-परखा जा सकता है।

उसी प्रकार, भारतीय वनवासियों के लिए 'आदिवासी' शब्द भी अंग्रेज़ प्रशासकों का गढ़ा हुआ शब्द है (जो अमेरिकी इतिहास के 'एबोरिजनल' का अनुवाद है)। इसका निर्माण भी उसी अर्थ में हुआ, जिसके अनुसार गैर-वनवासी भारतीय किसी न किसी तरह 'बाहरी' मूल के हैं। हमारे अधिकांश बुद्धिजीवियों की सुप्तावस्था का यह प्रमाण है कि इस शब्द को सहज स्वीकार करके वे स्वयं अपने को तथा सभी गैर-वनवासी भारतीयों को 'बाहरी'

मान लेते हैं। इस प्रकार, औपनिवेशिक विभाजनकारी राजनीति की गढ़ी धारणा और अलगाववादी सिद्धांत को आज भी बल पहुँचाते हैं।

'आदिवासी' शब्द की तरह भारत में उत्तर-दक्षिण, आर्य-अनार्य, तथा वैदिक-द्रविड़ भेद से संबंधित सभी बातें निराधार हैं। इन सब विभेदों का प्रचार किया जाता है, मगर कोई प्रमाण नहीं दिया जाता। उलटे उनके काल्पनिक होने संबंधी सभी तथ्यों, तर्कों और अध्ययनों को जान-बूझ कर उपेक्षित किया जाता है। ऐसा करने वाले देसी-विदेशी संगठनों, एक्टिविस्टों की राजनीतिक सक्रियता और मोर्चेबंदी कोई संदेह नहीं छोड़ती कि भारत में आर्य-अनार्य, वैदिक-द्रविड़, दलित-सवर्ण भेदों के निरंतर, उग्र प्रचार का उद्देश्य शरारतपूर्ण है। तनिक भी परीक्षण इसे स्वतः सामने ला देता है।

इस विषय पर हाल की तीन महत्वपूर्ण पुस्तकें उल्लेखनीय हैं, श्रीकान्त तलागेरी की द *ऋग्वेद एंड अवेस्ता* (2000), कोएनराड एल्स्ट की *एस्टेरिक इन भारोपीयस्थान* (2007), तथा निकोलस कजानास की इंडो-*आर्यन ओरिजिन्स* (2010)। यह पुस्तकें पूरे विस्तार से इतना अवश्य प्रमाणित कर देती हैं कि —

1. आर्य कोई नस्ल नहीं थी। यह शब्द भद्र, सज्जन, सुसंस्कृत आदि गुण बताने वाला व्यक्तिवाचक विशेषण ही रहा है, जो उत्तर और दक्षिण भारतीय भाषाओं में वही, एक-सा अर्थ रखता रहा है।
2. वैदिक सभ्यता और 'ऋग्वेद' भारत से बाहर की किसी जाति की थाती नहीं, जो बाद में यहाँ लाई गई, बल्कि वह मूलतः यहीं की है।
3. 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' का उदय अनुमानों, कल्पनाओं के आधार पर हुआ, और औपनिवेशिक अंग्रेज़ सत्ता तथा ईसाई-मिशनरी तंत्र ने इसका उपयोग भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन और समाज को निरंतर विभाजित करने में किया।
4. आज भी इस का उपयोग भारत विरोधी, हिन्दू विरोधी राजनीतिक प्रचार में ही हो रहा है।
5. इस कटिबद्ध प्रचार तथा उसके कूटनीतिक दुरुपयोग के पीछे सबसे बड़ी ताकत देशी-विदेशी चर्च-संगठन हैं, जो अपनी धर्मांतरणकारी योजनाओं के लिए दलित, द्रविड़, दक्षिण आदि हर अवधारणा का उपयोग करके भारत पर अपने आध्यात्मिक आक्रमण को धार देते रहते हैं।

उपर्युक्त पुस्तकों के बारे में यह भी जोड़ा जाना चाहिए कि आलोचकों ने इनके बारे में जो कुछ भी रुख रखा हो, किसी ने उपर्युक्त पाँच बातों का कोई समुचित बौद्धिक खंडन नहीं किया है। यह पुष्टि करता है कि 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' का राजनीतिक दुरुपयोग होता रहा है और यही आज इसका वास्तविक मूल्य है।

हाल में, राजीव मल्होत्रा और अरविन्द नीलकंदन की चर्चित पुस्तक *ब्रेकिंग इंडिया — वेस्टर्न इंटरवेंशंस इन द्रविड़ियन एंड दलित फ़ॉल्टलाइंस* (दिल्ली; हार्पर कॉलिन्स, 2011) में अनगिनत देशी-विदेशी लेखकों, प्रचारकों के उदाहरण दिए गए हैं, जो भारत विरुद्ध योजनाओं में शामिल हैं। चूँकि पाँच वर्ष बीत जाने के बाद भी उसके विवरणों को चुनौती नहीं दी गई, इससे उनकी गंभीर सच्चाई समझी जा सकती है। यह सच्चाई कि काल्पनिक या अतिरंजित भेदों को आधार बनाकर भारत को गाँव-गाँव तक समानांतर, कई रूपों में विखंडित कर तोड़ने, लड़ाने का प्रयास

चल रहा है। केवल प्रचार के बल पर हर तरह के 'भेद' और 'अत्याचार' को स्वयंसिद्ध मानते हुए भारत के कोने-कोने में सामाजिक शत्रुता, नस्लवाद, हिंसा और अत्याचार को स्थायी, भयावह, परिदृश्य बताया जाता है। भारत संबंधी ऐसा अत्याचार-साहित्य गढ़ने, और विविध नामों, मंचों, प्रकाशनों से उसे दुनिया भर में प्रचारित करते हुए भारतीय समाज की एक मनगढंत, दूषित छवि अंतर्राष्ट्रीय मंचों, पश्चिमी देशों के विदेश नीति संस्थानों, आदि को दिखाई जाती है ताकि छल-बलपूर्वक एक भारत विरोधी मुहिम को दिनों-दिन मज़बूत किया जा सके।

यह चिंता की बात है कि इतने विवाद और आलोचनाओं के बाद भी दलित-सवर्ण, वैदिक-द्रविड़ विभेदों की अतिरंजित राजनीति के प्रति कोई चेतना नहीं दिखाई पड़ती। अनेक राष्ट्रवादी नेता, लेखक, विद्वान भी इस औपनिवेशिक, काल्पनिक सिद्धांत को मज़े से स्वीकार करते चल रहे हैं। उन्हें इस का गुमान भी नहीं था कि इस 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' को स्वयं उनके विरुद्ध कितने ज़बर्दस्त, और संगठित तरीके से इस्तेमाल किया जा रहा है।

यह भी कि भारत में हर प्रकार की विभेदकारी राजनीति के लिए 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' कितना ज़रूरी समझा जाता है। इसी से यह भी झलकता है कि दलित-सवर्ण, वैदिक-द्रविड़ विभेदों का संगठित, अंतर्राष्ट्रीय प्रचार कितना कपटपूर्ण है, क्योंकि हज़ारों साल पहले के काल्पनिक 'आर्य आक्रमण' का सहारा लिए बिना, आज के भारतीय समाज में शत्रुतापूर्ण विभेद, अत्याचार, आदि की बातों को बल पहुँचाने का कोई विशेष आधार नहीं है। अन्यथा इतनी शिद्दत से 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' को नहीं लहराया जाता, न ज़िदपूर्वक इसे पकड़े रहा जाता।

यह सामान्य बुद्धि की बात है कि यदि वर्तमान समय में 'क' नामक कोई व्यक्ति या समूह 'ख' नामक किसी अन्य व्यक्ति या समूह पर अत्याचार करता हो, उससे घृणा करता हो, तो 'क' के विरुद्ध लड़ने, प्रचार करने के लिए ऐसे किसी काल्पनिक तथ्य की अनिवार्यता नहीं कि उसके पूर्वज हज़ारों साल पहले भी यही करते थे। तब 'क' के विरुद्ध लड़ाई को इससे कोई फ़र्क नहीं पड़ेगा, यदि कोई साबित करे कि हज़ारों साल पहले वाली बात का कोई प्रमाण नहीं, या उल्टी बात है। किंतु दलित-सवर्ण, द्रविड़-वैदिक विभेद पर आधारित राजनीति करने वालों का 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' को लहराना दिखाता है कि उनके पास वर्तमान स्थिति के आधार पर अपनी विभाजनकारी योजना चलाने की क्षमता नहीं।

इस प्रकार, भारत में हर प्रकार की अलगाववादी, विद्वेषकारी और धर्मांतरणकारी राजनीति चलाने के लिए 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' के उपयोग के बावजूद भारत के कर्णधार इसके प्रति उदासीन रहे हैं। कुछ प्रोफ़ेसर इसलिए भी यह सिद्धांत मानते हैं कि नहीं तो 'हिन्दू सांप्रदायिक इसका लाभ उठाएँगे।' यानी, भारत-गौरव की बात करने वाले कह सकेंगे कि वैदिक सभ्यता विशुद्ध भारतीय है, मूल आर्य हैं, जो दुनिया के सबसे पुराने सभ्य निवासी हैं, आदि। हालाँकि, ऐसे प्रोफ़ेसरों को, इस तर्क से, 'आर्यों का मूल स्थान पूर्वी या मध्य यूरोप' बताने के सिद्धांत का और भी कड़ाई से विरोध करना चाहिए, क्योंकि

उसका नाज़ी हिटलरवादियों और उनके जैसे नस्लवादियों ने भयंकर दुरुपयोग किया है। मगर वे नहीं करते, जो उनके वैचारिक अधकचरेपन का प्रमाण है।

यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि आर्य आक्रमण सिद्धांत के काल्पनिक होने तथा दुरुपयोग के बावजूद यहाँ अनेक संस्थाएँ इसे बिना विचारे मान्यता दिए हुए हैं। जहाँ-तहाँ इतिहास, राजनीति और साहित्य के पाठों में यह विद्यार्थियों को पढ़ा दिया जाता है। भारत में जाति, जनजाति आदि के बारे में कई अलगाववादी मान्यताएँ बिना किसी प्रमाण के चल रही हैं, जबकि श्री अरविन्द (‘*भारतीय संस्कृति के आधार*’, 1921), और डॉ. अंबेडकर (‘*अनटचेबल्स — हू वर दे...*’, 1948) से लेकर नवीनतम शोध तक बार-बार उस सिद्धांत का ठोस खंडन होता रहा है।

निकट काल में, श्री अरविन्द के ही प्रखर शिष्य के. डी. सेठना (अमल किरण) ने अपनी पुस्तक *कर्पसा इन वैदिक इंडिया* (1982) में नए तथ्यों से दिखाया कि आर्य आक्रमण सिद्धांत सही नहीं हो सकता, क्योंकि ऋग्वेदी संस्कृति हड़प्पा सभ्यता से पहले की साबित होती है, और ऋग्वेदी संस्कृति के भारतीय होने पर कोई विवाद नहीं है। सेठना की खोज का आधार यह है कि हड़प्पा सभ्यता में कपास के उपयोग के प्रचुर प्रमाण हैं, जबिक ऋग्वेद में कपास का कोई उल्लेख नहीं है। यह केवल कपास ही नहीं, हड़प्पा सभ्यता के कुछ अन्य विवरणों से स्पष्ट होता है कि ऋग्वेद उससे बहुत पहले की सभ्यता है। अतः वैदिक भारतीयों के कहीं और से आए होने का आधार नहीं मिलता।

सेठना के बाद अमेरिकी पुरातत्ववेत्ता जिम शैफ़र ने भी अपने कई शोध-पत्रों में भारत पर आर्य आक्रमण सिद्धांत, जिसे अब कुछ सुधारकर आर्य ‘आगमन’ सिद्धांत भी कहा जाता है, को गलत बताया। इन सबसे भारतीय पुरातत्वविदों का भी ध्यान आकृष्ट हुआ कि भारत पर आर्य आक्रमण या आगमन सिद्धांत के पक्ष में कोई ठोस प्रमाण नहीं हैं, जबकि इस सिद्धांत को विगत डेढ़ सौ वर्षों से सत्ताधारियों का संरक्षण मिल रहा है। फिर भी यहाँ कथित आर्यों के बाहर से आए हुए होने का कोई नया पुरातात्विक, ऐतिहासिक या भाषा-शास्त्रीय आदि प्रमाण नहीं मिल पाया। वह भी तब, जबकि इस बीच इतिहास संबंधी शोध के लिए कई नयी वैज्ञानिक, तकनीकी सुविधाएँ उपलब्ध हुईं। साथ ही, यह भी दिखा कि इस सिद्धांत का राजनीतिक दुरुपयोग भारत ही नहीं, यूरोप में भी कई देशों में होता रहा है।

इस दोहरे, रोचक यथार्थ से कुछ भारतीय पुरातत्वविदों (जैसे प्रोफ़ेसर बी.बी. लाल) ने भी अपनी मान्यताएँ बदलीं जो भारत पर आर्य आक्रमण/आगमन को पहले मानते रहे थे। इसलिए मानते रहे थे, क्योंकि पारंपरिक रूप से यही पढ़ाया, बताया जाता रहा था।

किंतु नयी खोजों से आर्य आक्रमण सिद्धांत के निराधार होने के नए-नए प्रमाणों के बावजूद, यहाँ विदेशी एजेंसियों द्वारा संपोषित द्रविड़-दलित अध्ययन, तदनुरूप राजनीतिक एक्टिविज़्म, आदि में रंच-मात्र भी संशोधन नहीं हुआ है। वे उसी तीव्रता, और बुनियादी विश्वास से आर्य आक्रमण सिद्धांत से जोड़कर यहाँ हर स्तर पर शत्रुतापूर्ण भेद, दुराव,

आदि पर 'शोध' तथा मनमाना प्रचार कर रहे हैं। यह कोई अतिश्योक्ति नहीं कि आज भारत में हर प्रकार की अलगाववादी, विखंडनकारी राजनीति को बल पहुँचाने वाले सिद्धांत के रूप में आर्य आक्रमण का ही दुरुपयोग होता है।

उदाहरण के लिए, देवी दुर्गा के बदले महिषासुर-पूजा को बढ़ावा देना। कुछ पहले दुर्गापूजा के अवसर पर एक बड़े अंग्रेज़ी अखबार ने देश भर में हुई दुर्गापूजा की कोई तस्वीर या समाचार तो नहीं छापा, पर 'अनुसूचित जातियों, आदिवासियों व पिछड़े वर्गों' द्वारा 'उत्तर प्रदेश, बिहार, झारखंड, पश्चिम बंगाल और ओडिशा' में 'महिषासुर शहादत दिवस' मनाने का समाचार मुखपृष्ठ पर, वह भी पूरे छह कॉलम में दिया। (*इंडियन एक्सप्रेस*, 14 अक्तूबर 2013)। उसमें एक विचित्र-सी तस्वीर भी थी, जिसमें किसी महिषासुर मूर्ति के सामने दो युवक शर्ट-पैंट-बेल्ट लगाए बाकायदा फ़ोटो खिंचा रहे हैं। यानी, पहले तो समाचार ऐसे था, मानो उक्त समुदायों (जो कम से कम पचास करोड़ आबादी, यानी हिन्दू बहुसंख्या है) द्वारा केवल महिषासुर-पूजा हुई, जबकि तस्वीर में श्रद्धालु भीड़ तो क्या, किसी एक भी दर्शनार्थी के बदले दो एक्टिविस्ट उस मूर्ति के साथ वैसे खड़े थे, जैसे किसी वीआईपी के साथ फ़ोटो खिंचाते हैं।

वह तस्वीर ही बयान कर देती है कि महिषासुर की पूजा में कोई श्रद्धालु जनता नहीं थी। अंदर समाचार विवरण भी, 'फ़ोन पर दलित एक्टिविस्ट ने बताया' करके था। यानी एक-दो एक्टिविस्टों ने जो भी कहा, उसी को मानो पचास करोड़ हिन्दू जनता की भावना बताकर अखबार ने परोस दिया। इसमें विघटनकारी राजनीतिक संदेश तो था ही, साथ ही उसमें देवी दुर्गा के प्रति अशोभनीय बातें भी थीं। चार दिन बाद उसी अखबार ने वही समाचार छोटे रूप में दुहराकर पुनः छापा कि देश भर में 'असंख्य ज़िलों में बड़े पैमाने पर महिषासुर दिवस' मनाया गया। इस बार खबर दिल्ली के एक केंद्रीय विश्वविद्यालय के 'बैकवर्ड स्टूडेंट फ़ोरम' प्रवक्ता के हवाले से प्रस्तुत की गई। उसी सहजता से, मानो सभी बातें शत-प्रतिशत सही हों — किसी का दावा या प्रचार नहीं।

अखबार ने दोनों बार समाचार इस तरह दिया मानो उसके संवाददाता-तंत्र के पास 'व्यापक रूप से' मनाई गई इस घटना में वास्तविक जन-भागीदारी परखने का कोई साधन या ज़रूरत न हो। उसने इसे समर्थन-लहजे में छापा। पूरे प्रसंग में ध्यान देने की बात यह है कि उसमें 'आर्य-अनार्य' के विभेद तथा 'बाहरी आर्यों द्वारा भारतीय अनार्यों पर आक्रमण' सिद्धांत को ही लहराया गया था। अर्थात्, दुर्गा उन बाहरी आर्य आक्रमणकारियों द्वारा भेजी गई दुष्टा थी, जिसने भोले-भाले सज्जन, मगर देशी-अनार्य राजा महिषासुर को धोखे से मार डाला।

यह एक उदाहरण है कि किस तरह से आर्य आक्रमण सिद्धांत को हर प्रकार की हिन्दू विरोधी, भारत विरोधी, विखंडनकारी-अलगाववादी राजनीति में आदतन प्रयोग किया जाता है। यदि महिषासुर-प्रचार की तरह ही अन्य ऐसे ही अभियानों, योजनाओं के उदाहरणों की परख हो, तो स्पष्ट होगा कि महिषासुर पूजा का ऐसा प्रचार कोई अपवाद या अनोखी क्रिया नहीं। ऐसे कार्य-प्रचार किसी बड़ी परियोजना का सुविचारित कदम हैं, जिसकी पीठ पर ताकतवर

संस्थानों का वरदहस्त है। नहीं तो, किसी ऊल-जलूल दावे को, किसी बड़े अंग्रेज़ी अखबार के मुख-पृष्ठ पर छह कॉलम दिलाने का प्रयास करके देख लें।

महिषासुर पर कुछ पत्र-पत्रिकाओं ने जो किया, उसे राजीव मल्होत्रा के शोध के समानांतर रखकर समझा जा सकता है। उनकी पुस्तक *ब्रेकिंग इंडिया* हमारे शैक्षिक-बौद्धिक विमर्श और विकृतियों की कलई खोलती है। उसमें प्रमाणों के आधार पर दिखाया गया है कि आर्य आक्रमण/आगमन सिद्धांत तथा 'द्रविड़वाद' जैसी काल्पनिक अवधारणाओं को एक विघटनकारी राजनीति का बुनियादी औज़ार बनाया गया है। डेढ़-दो सौ वर्ष पहले अनुमान से शुरू हुई बात को पुष्ट करने वाला कोई प्रमाण आज तक नहीं मिला। फिर भी, भारत को कमज़ोर करने, तोड़ने की रणनीति में उसके उपयोग की गुंजाइश से शत्रुओं ने उसका बहुरूप प्रचार अहर्निश जारी रखा। एक बात जो अपने सार-तत्व में निराधार है, ऐसे फ़ैलाई जाती है, मानो स्वयं-सिद्धि हो!

अनेक यूरोपीय विद्वानों द्वारा भी स्वीकार कर लेने के बावजूद कि द्रविड़-आर्य विभेद के तत्वों का कोई ठोस प्रमाण नहीं, इस विभेद का राजनीतिक, विभाजनकारी उपयोग जारी है। उसमें जितनी भी अन्य विभाजक अवधारणाएँ हो सकती हैं, उन सब को भी जोड़ लिया गया है। ताकि लाखों भारतीयों को 'ब्राह्मण अत्याचार' जैसे 'स्थायी-शत्रु' के विरुद्ध उभारा जाए। साथ ही हिन्दू धर्म को ही साम्राज्यवादी, अत्याचारी रूप में प्रचारित किया जा सके।

उस विभाजनकारी परियोजना पर स्वामी विवेकानन्द, श्री अरविन्द, स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा गाँधी, डॉ. अंबेडकर जैसे अनेक महापुरुषों ने आवाज़ उठाई थी। मगर स्वतंत्र भारत में अज्ञानवश या राजनीतिक कारणों से उस स्वर को दबा दिया गया।

उसी का फल है कि धीरे-धीरे इतिहास, समाजशास्त्र, नृतत्वशास्त्र, लोक-कला अध्ययन, राजनीति आदि विषयों में कई मनगढंत अवधारणाओं का वर्चस्व और दुष्प्रभाव जम गया है। 'द्रविड़वाद' का जो विचार केवल कल्पना थी, दशकों के प्रचार और दुहराव से आज असंख्य लेखक, पत्रकार उसे स्वयंसिद्धि मानते हैं। बिना गंभीर अध्ययन-शोध के कुछ चुने हुए मुहावरे और नारे दुहराए जाते हैं। इस दुहराव से बड़ी संख्या में समाज विज्ञान के छात्र उसे अपना लेते हैं। उन्हीं से अंग्रेज़ी पत्रकार जगत भी पर्याप्त संक्रमित है।

ब्रेकिंग इंडिया उदाहरणों के साथ दिखाती है कि भारत में अधिकांश अलगाववादी आंदोलन आर्य आक्रमण/आगमन सिद्धांत का हवाला देते हैं। तदनुरूप भारतीय इतिहास का मिथ्याकरण भी किया गया है। दुःख की बात है कि अनेक लेखक, बुद्धिजीवी, कलाकर्मी, पूरे उत्साह से उन कामों का 'प्रगतिशील' रूप दिखाने में लग जाते हैं। ऐसे लोगों की तुलना राजीव मल्होत्रा ने ब्रिटिश-राज सेना के सिपाहियों से की है, जो वेतन लेकर भारतीय लोगों पर ही गोलियाँ चलाते थे और भारत को पराधीन रखते थे। *ब्रेकिंग इंडिया* के विविध विवरणों से दिखता है कि किस प्रकार अनेक बड़े बुद्धिजीवी और अकादमिक पदों पर बैठे लोग भारतीय सभ्यता और वर्तमान सच्चाई को विकृत कर पेश करते हैं। वह सब

हमारी मानसिकता को दूषित और विभाजित करने के काम आता है।

इस वैचारिकता का लक्ष्य भारत का राजनीतिक विखंडन है, यह इससे भी देखा जा सकता है कि यह एकांगी रूप से दलितों पर अत्याचार की कथाएँ, समाचारों को अतिरंजित करता और प्रमुखता देता है, तथा दलितों में उन्नति, खुशहाली, सफ़लता आदि के सभी उदाहरणों, तथ्यों को कड़ाई से दबाता है। यह तो कोई अकादमिक या अचेत कार्य नहीं हो सकता!

इतने गंभीर निहितार्थों के बावजूद यहाँ राष्ट्रवादी नेताओं, बुद्धिजीवियों ने 'आर्य आक्रमण/आगमन' सिद्धांत का दुरुपयोग समझने तथा उसके विरुद्ध शिक्षा और प्रचार कार्य को कोई महत्व नहीं दिया है। बल्कि, कुछ ने तो स्वतः मान लिया कि वह सिद्धांत खारिज हो चुका और अब उस पर कुछ करने, कहने की ज़रूरत ही नहीं। यह बौद्धिक बचकानापन और आलस्य, दोनों ही है, जो नहीं देख पाता कि उस सिद्धांत का कितनी गंभीरता, और ज़िदपूर्वक भारत विरोधी राजनीति में राष्ट्रीय-अंतर्राष्ट्रीय मंचों पर उपयोग किया जा रहा है।

उदाहरण के लिए, संयुक्त राज्य अमेरिका में 2005 में पाठ्यपुस्तकों पर एक विवाद हुआ। पुस्तकों में भारतीय इतिहास और हिन्दू धर्म, समाज के बारे में लिखी कुछ बातों पर अमेरिकी हिन्दुओं ने आपत्ति की। उसमें एक आपत्ति भारत पर 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' पढ़ाए जाने पर भी थी। किंतु हिन्दू विरोधी राजनीतिक गुटों ने तीव्रता से उन आपत्तियों का विरोध कर 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' को पाठ्यपुस्तकों में यथावत रहने देने में सफ़लता पाई।

इससे भी समझ सकते हैं कि इस सिद्धांत के उपयोग पर कितनी सतर्कता है। आपत्ति उठाने वाले भारतीय बुरी तरह पराजित हुए, क्योंकि उन्होंने स्वयं मान लिया था कि यह सिद्धांत अब 'गलत माना जा चुका' और उन्होंने अदालत को यही तर्क दिया। पर वे यह समझने में विफ़ल रहे कि यह सिद्धांत अभी भी भारत विरोधी राजनीति में महत्ता रखता है। इसीलिए इस पर तथ्यपूर्ण तर्क देने के प्रति सावधान नहीं रहे। वही अनजानापन भारत में भी दिखता है, जहाँ कई राज्यों में 'आर्य आक्रमण सिद्धांत' उसी तरह पढ़ा और पढ़ाया जा रहा है।

अतः हमारा कर्तव्य है कि भारत में चल रही तीखी वैचारिक-राजनीतिक लड़ाई को संपूर्णता में जानें व समझें। इसे राजीव मल्होत्रा ने 'बौद्धिक, भू-रणनीतिक कुरुक्षेत्र' की संज्ञा दी है। इसमें हम अपनी भूमिका पहचानें और सत्यनिष्ठा के आधार पर संघर्ष करें। जाने-अनजाने निष्क्रिय न रहें, न आत्म-विरोधी बने, न दुर्भावपूर्ण विचारधाराओं, निराधार प्रस्तुतियों को यूँ ही जाने दें। हर वह बात जो भारतीय समाज को बाँटने, तोड़ने, अलगाव भरने के संकेत देती है — उसे ठोस तथ्यों, आँकड़ों पर जाँचें-परखें। जिनके माध्यम से हमारे देश तथा समाज में घातक विष फ़ैल रहा है, उन सपाट घोषणाओं व कोरी नारेबाज़ी वाले लेखन तथा विचारों को उनकी जगह दिखाएँ। यही हमारे और मानवता के हित में भी है।

संदर्भ

के. डी. सेठना. 1992. *द प्रॉब्लम ऑफ़ आर्यन ओरिजिन*. आदित्य प्रकाशन, नयी दिल्ली

____. 1981. *कर्पसा इन प्री-हिस्टोरिक इंडिया — ए क्रोनोलॉजिकल एंड कल्चरल क्लू*. बिब्लियाइंपैक्स प्राइवेट लिमिटेड, नयी दिल्ली.

कोएनराड, एल्स्ट. 2007. *एस्टेरिक इन भारोपीयस्थान — माइनर राइटिंग्स ऑन द आर्यन इनवैजन डिबेट*. वॉयस ऑफ़ इंडिया, नयी दिल्ली.

निकोलस, कजानास. 2011. *इंडो-आर्यन ओरिजिन्स एंड अदर वैदिक इशूज़*. आदित्य प्रकाशन, नयी दिल्ली.

श्रीकान्त, तालाघेरी. 2003. द *आर्यन इनवैजन थ्योरी एंड इंडियन नेशनलिज़्म*. वॉयस ऑफ़ इंडिया, नयी दिल्ली.